ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 60-62
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

बौद्ध वाङ्मय में अर्थव्यवस्था के कतिपय सन्दर्भ में

ओंकार सिंह
शोध अध्येता– प्राचीन इतिहास विभाग, दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0), भारत

Received-12.07.2023, Revised-18.07.2023, Accepted-23.07.2023 E-mail: rathourrocks1988@gmail.com

सारांशः ***यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि किसी भी काल को समझने के लिए उस का अध्ययन अपरिहार्य है, क्योंकि साहित्य ही वह पूँजी है जिसमें समाज के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक रूप की अभिव्यक्ति होती है। बौद्ध वाङ्मय इसका अपवाद नहीं है।***

इतिहास की संरचना में जिन धारकों का योगदान होता है, उनमें आर्थिक तत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने गये। उल्लेखनीय है कि समाज, धर्म, कला एवं अर्थव्यवस्था के सहज संश्लेषण से सभ्यता एवं संस्कृति के कलेवर का निर्माण होता है जिसमें अर्थव्यवस्था आधारशिला का कार्य करती है। मानव जाति का विकास इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन काल में वही जातियाँ सभ्यता एवं संस्कृति का विकास कर सकी जो कृषि, व्यापार–वाणित्य, व्यवसाय आदि का भलि–भाँति उपयोग कर सकी। बौद्ध वाङ्मय में जिस अर्थव्यवस्था का उल्लेख मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि कृषि, व्यापार, वाणिज्य एवं प्रगतिशील उद्योग–धन्धों ने तत्कालीन समाज को आर्थिक रूप से सुदृढ़ किया।

कुंजीभूत शब्द– राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक रूप, आर्थिक तत्व, समाज, धर्म, कला अर्थव्यवस्था, आधारशिला।

कृषि तथा पशुपालन– बौद्ध वाङ्मय में वर्णित कृषि–कार्य का जब हम अवलोकन करते है तो ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में कृषि का समुचित विकास हो चुका था। इस समय लोगो की जीविका का प्रमुख श्रोत कृषि ही था। छठीं शताब्दी इ0 पू0 को द्वितीय नगरीय क्रान्ति के रूप में जाना जाता है। इस काल में लौह उपकरणों के अविष्कार के परिणाम स्वरूप गंगाघाटी क्षेत्र तथा पर्वत घाटियों में अधिक से अधिक भूमि का उपयोग कृषि कार्य में किया जाने लगा, जिनसे उत्पादन आवश्यकता से अधिक होने लगा। इस कृषि अधिशेष के परिणामस्वरूप कृषकों के आर्थिक दशा में सुधार हुआ। कृषक स्वयं तथा मजदूरों की सहायता से कृषि कार्य करते थे। बौद्ध वाङ्मयो में ब्राहमणों द्वारा कृषि कार्य को अपनाने का उल्लेख मिलता है।

सुत्तनिपात में कसिभारद्वाज ब्राह्मण द्वारा पाँच सौ हलों के साथ कृषि कार्य करने का तथा भगवान बुद्ध से स्वयं को कृषक बताने का उल्लेख मिलता है। इस काल में कृषकों की तीन कोटियाँ बतायी गयी है।

1. **अहलि–** वे कृषक जिनके पास हल नहीं थे।
2. **सुहलि–** वे कृषक जिनके पास अच्छे हल थे।
3. **दुर्हलि–** वे कृषक जिनके हल घिस गये थे।

बौद्ध साहित्यों में कृषि कार्य से सम्बंधित कार्यो में जुताई, बुआई, लवनी (लटाई), मणनी (मड़ाई) ओसाई आदि का उल्लेख मिलता है। साथ ही फसलों को तीन कोटियों के अन्तर्गत रखा जाता था– क्षैत्रिक, आरामिक, तथा आटविक। खेतो में उत्पन्न वस्तु 'क्षैत्रिक' उद्यानो एवं आरामों से उत्पन्न वस्तु 'आरामिक तथा जंगलो में उत्पन्न वस्तुओं को 'आटविक' कहा जाता था। क्षैत्रिक भूमि भी दो प्रकार की होती थी– प्रथम 'सेतु' तथा द्वितीय 'केतु'। कृत्रिम संसाधनो से सिंचित भूमि 'सेतु' तथा वर्शा पर निर्भर सिंचिम भूमि 'केतु' कहलाती थी।

बौद्ध वाङ्मय में कृषि से उत्पन्न विभिन्न खाद्यान्नों का विवरण हमें प्राप्त होता है। कपास, बाजरा, चना, मटर, मूंग, काद्रव (कोदो), कुरविंद (उड़द), गोधूम (गेहूँ), यव (जौ), तिल, तंडुल (चावल), व्रीहि (एक प्रकार का चावल), शालि (जड़हन चावल), सर्शप (सरसों), नारियल आदि की कृषि की जाती थी। इनके अतिरिक्त अरण्यों एवं उद्यानों से विविध फल–फूल और औषधियाँ प्राप्त होती थीं।

जातकों से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में पशुपालन भी आर्थिक जीवन का एक प्रमुख घटक था। लोगों द्वारा पशु–चलित वाहनो का यातायात एवं व्यापार में उपयोग किया जाता था। बुद्ध ने अपने उपदेशों के माध्यम से जीव–हिंसा का विरोध किया फलस्वरूप पशुपालन को प्रोत्साहन मिला। जहॉ पहले पशुओं का उपयोग मांस–भक्षण के लिए किया जाता था, वही अब इनका उपयोग कृषि कार्य तथा व्यापार आदि में किया जाने लगा। जिससे कृषि के साथ–साथ उद्योग–धन्धों का भी प्रसार हुआ।

व्यवसाय तथा उद्योग–धन्धे– बौद्ध काल का समय द्वितीय नगरीय क्रांति के रूप में जाना जाता है अतः इस युग में नगरो एवं अधिष्ठानों के विकास के परिणामस्वरूप औद्योगिक संस्थानो का महत्व स्थापित होने लगा। बौद्ध साहित्यों से ज्ञात होता है कि इस समय वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप जातियों में स्थापित होने लगा और वे अपने व्यवसाय के आधार पर पहचाने जाने लगे। इनके अपने पृथक–पृथक व्यवसाय एवं उद्योग–धन्धें थे। जातक ग्रंथों में अट्ठारह प्रकार के उद्यामों का उल्लेख मिलता है, जिसमें से कुछ प्रमुख का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है जो इस प्रकार है–

कुलाल (कुम्हार), बढ़ई, चर्मकार, लोहार, चित्रकार, चिकित्सक आदि। कुलाल वर्ग की संज्ञा वर्तमान के कुम्हार से स्थापित की जाती है, जो मिट्टी के विविध प्रकार के बर्तनों का निर्माण करते थे। बौद्ध साहित्यों से विदित होता है कि ये लोग गधों पर अपने सामान को लादकर तक्षशिला जैसे नगरों तक बेचने जाते थे। बौद्ध साहित्यों में 'बड़ढ़की ग्राम' का उल्लेख मिलता है, जहाँ फर्नीचर, गाडियाँ तथा समुद्री जहाजों का निर्माण कार्य किया जाता था। बौद्ध काल में अधिकांश भवन एवं आवास लकड़ी के बनाये जाते थे।

बौद्ध साहित्यों में तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार के व्यवसायों एवं उद्योगों का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपन्हो में लोहा, सोना, सीसा, टिन, तांबा आदि धातुओं से वस्तुओं के निर्माण करने वाले पृथक–पृथक वर्ग का समाज में होने का उल्लेख मिलता है।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

लोहार वर्ग हल, भाला, खड्ग आदि उपकरणों के अतिरिक्त घरेलू बर्तनों का भी निर्माण करते थे। स्वर्णकार सोने के विभिन्न प्रकार के अत्यन्त कलात्मक एवं आकर्षक आभूषणों का निर्माण करता था। जिसका उपयोग तत्कालीन समाज में सौन्दर्य प्रशाधन के रूप में किया जाता था। मज्झिम निकाय में वर्णन मिलता है कि एक रत्नकार ने आकर्शक वेलुरिय नामक रत्न को आठ पहलों में तराशकर अत्यन्त आश्चर्यजनक बनाया। जब उसे पीत वस्त्र में जड़ा गया, तब उसकी चमक चतुर्दिक फैलने लगी थी। इससे स्पष्ट होता है कि धातु का काम करने वाले अपनी कला में दक्ष एवं प्रवीण थे। इसके अतिरिक्त धोबी, बुनकर, मनियारिन, गन्धीक, जादूगर, नट, नर्तक, तालिक, कुम्भधुनिक, ज्योतिषी, खूदखोर, गान्धर्विक, काष्ठहारक, तृणहारक, आदि व्यवसायों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनको अपना कर लोग अपने परिवार का भरण–पोषण करते थे।

बौद्ध काल में वस्त्रोद्योग का भी यथेष्ठ विकास हुआ था। तत्कालीन समाज में वस्त्र व्यवसायियों द्वारा सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र बनाये जाते थे। शिवि प्रदेश सूती वस्त्रों के लिए, गांधार ऊनी वस्त्रो के लिए तथा वाराणसी रेशमी वस्त्रो के लिए प्रसिद्ध था। दीघनिकाय में सूती (कम्पाधिक), रेशमी (कौशेय), ऊनी (और्ण) आदि विभिन्न प्रकार के परिधानों का उल्लेख मिलता है, जिससे तत्कालीन समाज के तन्तुवाय की कला और कल्पना का ज्ञान होता है।

शिल्पियों का भी महत्व तत्कालीन समाज में बढ़ने लगा था। ये राज्य तथा समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। विभिन्न शिल्पि एवं व्यवसायों के विकास के कारण समाज में पृथक–पृथक संगठनो का अविर्भाव हुआ। जिन्हें 'श्रेणी' की संज्ञा दी गयी। श्रेणीयों के प्रधान को 'श्रेष्ठिन' (सेट्ठी) या 'जेट्ठक' कहा जाता था। ये श्रेणीयाँ बैंको का भी कार्य करती थी तथा माप–तौल, मूल्यनिर्धारण, मजदूरी आदि निश्चित करने का कार्य किया करती थी।

व्यापार एवं वाणिज्य– व्यापार आर्थिक जीवन में उत्पादन की अधिकता जनसामान्य की समृद्धि एवं सम्पन्नता का परिचालक है। बौद्ध साहित्यों के अवलोकन से इस काल में व्यापार की सुदृढ़ स्थिति के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होते है जो मुख्यतः दो रूपों में विभाजित थे– आन्तरिक व्यापार तथा वाह्य व्यापार। आन्तरिक व्यापार के अन्तर्गत समीप अथवा दूरस्थ स्थानीय बाजारों में वस्तुओं का क्रय–विक्रय किया जाता था। व्यापार के लिए रास्ते में विविध प्रकार की कठिनाईयों का सामना व्यापारियों को करना पड़ता था। उन्हे रास्ते में विविध प्रकार के कान्तारो (वन) से गुजरना पड़ता था। इन कान्तारों में चोर, डाकु, लुटेरे आदि के भय से ये लोग समुहों में यात्रा करते थे। इनके समुहों को 'सार्थ' कहा जाता था तथा इनका प्रमुख 'सार्थवाह' कहलाता था। ये लोग जंगल–रक्षको को मुद्राएं देकर जंगल पार करते थे। आन्तरिक व्यापार के लिए तीन प्रमुख मार्गो का उल्लेख मिलता है। एक मार्ग श्रावस्ती से होकर विदिशा, कौशाम्बी और साकेत के औद्योगिक केन्द्रों को जोड़ते हुए प्रतिष्ठान तक जाता था। दूसरा मार्ग श्रावस्ती से कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा और वैशाली के उद्योग केन्द्रो को जोड़ते हुए पाटलिपुत्र तक पहुचता था तथा तीसरा मार्ग गंगा एवं यमुना के जल द्वारा बनता था। ललितविस्तर से उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ के मध्य आन्तरिक व्यापार की पुष्टि होती है। व्यापारिक वर्ग आपस में सद्भावनापूर्ण सम्बंध बनाये रखते थे तथा आपस में मिलकर साझे में भी व्यापार किया करते थे।

बौद्ध काल में वाह्य व्यापार समुन्नत दशा में था। व्यापार के साथ–साथ विचारों को भी प्रचारित करने का कार्य दूर–दूर तक किया जाता था। जलमार्गो द्वारा जो वाह्य व्यापार होता था। वह बहुत ही कष्ठकर एवं भयावह होता था, फिर भी लोग कठिनाईयों से युद्ध कर व्यापार कार्य में संलग्न रहते थे। इनका व्यापारिक जीवन देश को प्रगतिशील, धन–धान्यपूर्ण बनाने तथा विदेशी राज्यों के साथ मेंत्रीपूर्ण सम्बंध बनाने में सहायक सिद्ध हुआ। व्यापार विभिन्न वस्तुओं, द्रव्यों, धातुओं आदि का होता था जिन्हे 'पण्य' कहा जाता था। बवेरू जातक में पक्षियों के व्यापार का उल्लेख मिलता है। जिस प्रकार कान्तार की यात्रा कठिन थी उसी प्रकार समुद्र की यात्रा भी दुष्कर थी। जल राक्षस, लुटेरे, समुद्री तुफान आदि बाधाओं से बचने के लिए वे देवी–देवताओं की प्रार्थना एवं बलि देते थे। ये लोग दिशा ज्ञान के लिए 'दिशाकाक' का उपयोग करते थे। पश्चिमी एशियाई देशों से व्यापार के लिए पश्चिमी भारत के हिन्द महासागर के तट पर अनेक बंदरगाह बने थे जिनमें भड़ौच तथा शोपारिक (सोपारा) प्रमुख थे।

इस प्रकार बौद्ध काल में व्यापार एवं वाणिज्य का पर्याप्त विकास एवं उत्थान हुआ, जो तत्कालीन समाज के एक प्रमुख आर्थिक स्तम्भ के रूप में स्थापित था। समाज में कुछ ऐसे व्यापारी भी थे, जो अधिकाधिक धन–लाभ की लालसा में अनैतिक माध्यमों का भी उपयोग करते थे।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बौद्ध युग में कृषि, पशुपालन, उद्योग–धन्धे, व्यापार–वाणिज्य की पर्याप्त उन्नति हुयी जो समाज के आधारभूत विकास को आर्थिक रूप से सुदृढ़ किया। कृशि के अधिशेष उत्पादन, विभिन्न उद्योगो तथा व्यापार–वाणिज्य की अभूतपूर्व प्रगति ने मिलकर परम्परागत कबाइली आधार पर गठित सामाजिक–आर्थिक संगठन को समाप्त कर दिया तथा अर्थव्यवस्था को विकास का एक नया आयाम प्रदान किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संयुक्तनिकाय, भाग– 2, पृ0 830, जातक, भाग–1, पृ0 36/328, सुत्तनिपात, पृ0 15, दिव्यावदान 131/25–26.
2. सुत्तनिपात, कसिभारद्वाज सुत्त, पृ0 15.
3. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट लीजेन्ड्स, 29.2,343.
4. जातक, संम्पादक–फाउल्सबोल, 1877–97.
5. जातक, पूर्वोक्त, 4.144, 277.

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

6. जातक पूर्वोक्त, 2, पृ0 74;1 पृ0 429; 5, पृ0 37;1, पृ0 429;2 पृ0 135;3, पृ0 383;4 पृ0 276;5, पृ0 405;6 पृ0 530;2, पृ0 240;4 पृ0 264.
7. जातक, पूर्वोक्त, 1,पृ0 244;2, पृ0 263;3, पृ0 225;5, पृ0 120;6, पृ0 536.
8. जातक, पूर्वोक्त, 6, पृ0 529.
9. मिश्र, डॉ जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना, 2002, अ0–15, पृ0 561.
10. बृहत्कल्प, भाष्य, 1.826.
11. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट लीजेन्ड्स, 28,1, पृ0 167, 259, 323.
12. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट लीजेन्ड्स, 29, 2, पृ0 186.
13. मिलिन्दपन्हो, बम्बई, 1940, 5.4, पृ0 323.
14. नाया यम्मकहा, 1, पृ0 42.
15. रीज डेविड्स, बुद्धिस्ट इंडिया, लंदन, 1903, पृ0 90.
16. दीघ निकाय, हिन्दी अनुवाद, राहुल सांस्कृत्यायन, सारनाथ, वाराणसी, 1936, ब्रह्मगाले सुत्त, 15.
17. मिलिन्दपन्हो, पूर्वोक्त, 5/331.
18. मित्रा, ललित विस्तर, 493/9–11.
19. दिव्यावदान– 13/32, 14/1.
20. मित्रा, ललित विस्तर, 276/99.
21. पंडर जातक, 518.
22. बलाहस्स जातक, 196.
23. सुस्सोदि जातक, 360.
24. जातक, पूर्वोक्त 1/109, 4/2.
25. थेरीगाथा 25/212.

*****